क्या हिन्दू अहले किताब हैं?

एक फ़िक्र अंगेज़ बहस

अब्दुर्रशीद अगवान
सदर यूनिर्वसल नालेज ट्रस्ट

जामिया अरबिया इस्लामिया दारुल हदीस, बदरपूर, ज़िला करीम गंज, असाम

25-27 रबीयुस्सानी 1437 हि0 मुताबिक़ 5-7 फरवरी 2016 ई0

इस्लामिक फ़िक़्ह अकेडमी (इणिया)

क्या हिन्दू अहले किताब हैं?

एक फ़िक्र अंगेज़ बहस

अब्दुर्रशीद अगवान, सदर यूनिर्वसल नालेज ट्रस्ट

हिन्दू रहनुमाओं की जानिब से बार बार यह सवाल उठाया जाता रहा है कि मुसलमान उन्हें काफिर क्यों कहते हैं? कुछ अरसा क़ब्ल विश्व हिन्दू परीशद की जानिब से मुस्लिम उलेमा से यह अपील की गई कि वह हिन्दूओं को काफिर कहने के ख़िलाफ़ फ़तवा जारी करें क्योंकि ऐसा कहना न सिर्फ ग़लत है बल्कि यह दोनों मज़हबी फ़िरक़ों के बाहमी ताल्लुक़ात को मुतास्सिर भी करता है। इस से क़ब्ल बाबरी मस्जिद के इन्हिदाम के बाद 18 दिसम्बर 1992 को विश्व हिन्दू परीशद के सदर श्री अशोक सिंघल ने बी बी सी को दिए एक इन्टरविव में अपनी यह शिकायत दर्ज की कि मुसलमान हिन्दूओं को काफ़िर समझते हैं जो कि ख़ूद मुसलमानों के अक़ीदे के ख़िलाफ़ है, क्योंकि काफ़िर तो वह होता है जिसे इस्लाम पेश किया जाए और वह उसका इन्कार कर दे, जब्कि हमारे सामने कभी इस्लाम पेश ही नहीं किया गया तो हम काफ़िर कैसे हो गए? मुमकिन है बाज़ लोगों को इस तरह के सवाल खड़े करने में विश्व हिन्दू परीशद के क़ाईदीन की कोई शरारत नज़र आए मगर इस सवाल की वजह

से और मुसलमानों के अदमे रद्दे अमल को पेशे नज़र रखते हुए आम हिन्दूओं में यह तास्सुर पैदा होता और बाक़ी रहता है कि वाक़ई मुसलमान उन्हें काफ़िर समझते हैं। अगर एक लम्हे के लिए यह मान लिया जाए कि जिन्दू क़ाईदीन इस सवाल को लेकर वाक़ई संजीदा हैं तो फिर मुसलमानों की यह ज़िम्मेदारी बनती है कि उन्हें अपने मुनासिब रद्दे अमल से आगाह करें। इस सवाल का जवाब देने की जो कुछ भी फौरी कोशिशें हुईं तो उनमें सिर्फ़ यह कह दिया जाता है कि काफ़िर लफ़्ज़ कोई गाली या तौहीन आमेज़ लफ्ज़ नहीं है बल्कि यह एक फ़िक्री व अमली कैफ़ियत का नाम है, लिहाज़ा हिन्दूओं को इस पर बुरा मानने की वजह नहीं है या यह कह दिया जाता है कि मुसलमान तो आम तौर पर हिन्दूओं को अहले वतन और बिरादराने वतन कहते हैं न कि काफ़िर।

शदीद फ़िरक़ा वराना तनाव के वक़्त जो सवाल उठता है और जिन हालात में उठाया जाता है और जिन हलक़ों की जानिब से उठाया जाता है वह एक संजीदा और माक़ूल जवाब चाहता है। बल्कि अगर इस सवाल पर बैनल मज़ाहिब मुज़ाकिरात मुनअक़िद हों तो शायद दोनों तबक़ों के दरमियान मौजूद कशीदगी को दूर करने में मदद मिल सके। बहरहाल यह कहना आसान है और करना मुश्किल क्योंकि यह मसला कि शरअन हिन्दूओं का दरजा क्या है? एक बहुत ही पेचीदा और हस्सास मौज़ू है लेकिन इस का हल न सिर्फ़ मुल्क में बेहतर हम आहंगी के लिए ज़रूरी है बल्कि इस मुल्क में दावते इस्लामी को फ़रोग़ देने के लिए भी इसी अशद ज़रूरत है। इस्लामी हलक़ों में इस मसला पर ग़ौर व फ़िक्र का आम तौर पर फ़ुक़दान है और इसकी वजूहात भी हैं। इसी पहली वजह तो यह है

कि हम मुतनाज़ा मसलों से आम तौर पर ग़ुरेज़ करते हैं ऐसे मसले जो बड़े पैमाने पर फ़िक्र अंगेज़ बहस में मुबतला कर दें इसके लिए हम ख़ूद को मुतहम्मिल नहीं पाते। दूसरी वजह हमारा दावती काम है जिस में मसाइल और हालात को तामीरी रुख़ देकर नए और पूरकशिश अंदाज़ में काम करने की उमूमन हौसला अफ़ज़ाई न होना है। फिर हम यह भी ख़्याल करते हैं कि जब एक सीधे सादे तरीक़े से काम चल रहा है तो किसी नए मसले को जन्म देना शायद मुनासिब न हो। हमारे यह अंदेशे और सहल पसन्दी दरअस्ल दावत के लिए ओर इस मुल्क में अपनी ज़िम्मेदारीयां कमा हक्क़ाहू अदा करने के लिए नुक़सान दह साबित हो रही है और मुल्क में उठने वाले मज़हबी मसाइल पर हमारे मुनासिब मौक़फ़ की कमी हमारी मुश्किलात में मज़ीद इज़ाफ़ा का बाइस हो रही है। इसी बात को पेशे नज़र रखते हुए यहां एक बहस उठाई गई है ताकी हिन्दूआं के बीच उठने वाले फिक्री और मज़हबी सवालात को समझ कर हम उन पर अपना रद्दे अमल ज़ाहिर करने की कोशिश कर सकें।

अहले किताबः

क़ुरआन करीम में 'अहले किताब' की इस्तिलाह का इस्तेमाल 30 बार किया गया है और एक जगर अहले इन्जील भी कहा गया है। यह इस्तिलाह आम तोर पर यहूदियों और ईसाइयों के लिए इस्तेमाल की जाती है। यहुदियों और ईसाइयों को अहले किताब इस लिए माना जाता है क्योंकि उनका अक़ीदा उन किताबों पर मुशतमिल है जिन्हें यहूद व नसारा आसमानी किताबें तस्लीम करते हैं और जिनका ज़िक्र क़ुरआन में हुआ है। बाज़ मुवर्रिख़ीन के नज़दीक अहले किताब वह लोग हैं जो मुसलमानों के

बुनियादी अक़ाइद मसलन तौहीद, फ़रिश्तों, आसमानी किताबों, नबियों और आख़िरत पर किसी न किसी दर्जे का ईमान रखते हों। मुसलमानों को अहले किताब के सिलसिले में कुछ ख़ुसूसी हिदायात दी गई हैं मसलन मुसलमान मर्द किसी किताबिया से (उसका मज़हब बदले बग़ैर) निकाह कर सकते हैं मगर एक बार में एक से ज़ाइद नहीं, मुसलमान अहले किताब का ज़बीहा खा सकते हैं, अहले किताब को ज़िम्मी बनाकर इस्लामी हुकूमत उसे अपने मज़हब पर अमल करने की आज़ादी देगी और ज़िज्या लेकर उनकी हिफ़ाज़त करेगी, उनके दरमियान इन्साफ़ उन्की अपनी किताबों के मुताबिक़ किया जाएगा, वग़ैरा।

बाद के ज़माने में साईबीन और मजूसियों को भी अहले किताब का दर्जा दिया गया। इसके जवाज़ में क़ुरआन की तीन आयात पेश की जाती हैं जहां यहूद व नसारा के साथ साथ साईबीन का ज़िक्र और एक आयात में उन सभी के साथ मजूस का ज़िक्र भी आया है। देखें आयात 2:62,69 और 22:17। इसके अलावा हुज़ूर स0 का यह फ़रमान कि मजूसियों को अहले किताब के बराबर समझाा जाए भी इस मौक़फ़ के लिए जवाज़ फ़राहम करता है।

जिन 31 आयात का ज़िक्र ऊपर हुआ है उनमें से 12 आयात सूरा आले इमरान में, 7 सूरा माइदा में और 4 सूरा निसा में और बाक़ी 8 मुख़तलिफ़ सूरतों में मौजूद हैं। इस सूरतों में आम तौर पर अहले किताब का हक़ के मामले में ग़लत रवैया और उनकी कजरवी पर तंक़ीद करते हुए उन्हें हक़ को क़ुबूल करने पर उभारा गया है। इस हवाले से उन्हें बताया गया है कि उन्का कौनसा अमल उन्की तरफ़ नाज़िल की गई

तालीमात के ख़िलाफ़ है और कौनसा अमल ऐसा है कि जो उन तालीमात में तहरीफ़ की वजह से फ़ासिद हो चुका है। गोया क़ुरआन बैनल मज़ाहिब मुबाहस Interfaith Dialogue के ज़रिए यहूद व नसारा को हक़ की जानिब बुला रहा है। जहां एक तरफ़ कलिमाए सिवा (2:64) की दावत देकर बैनल मज़ाहिब इत्तिहाद और हम आहंगी की कोशिश की गई है वहीं यहूद व नसारा की अपनी कुतुब में दी गई तालीमात पर निफ़ाक़ और बद अमली को बेनक़ाब किया गया है। इन आयात में जहां ख़ुदा तरस अहले किताब के अमले सालेह को पसन्दीदगी की निगाहों से देखा गया है वहीं बाज़ अहले किताब के फ़िस्क़ व फ़ुजूर को भी मन्ज़र आम पर लाया गा है। इस में कोई शक नहीं कि क़ुरआन करीम की दावती हिकमत अमली का यह एक शाहकार नमूना है जो इन आयात ओर इन से जुडी तमाम आयात में नज़र आता है। गोया कि जहां यहूद व नसारा को आम अरबों से अलग एक ख़ास ख़िताब 'अहले किताब' से नवाज़ा गया है और उन्हें कुछ शरई शहरी हुक़ूक़ भी दिए गए हैं मगर इस ख़िताब या दर्जा का असल पहलू दावते हक़ को मुबय्यन करना और यहूद व नसारा को बावर कराना है कि दावते इस्लामी कोई नई चीज़ नहीं बल्कि उनके जाने पहचाने अक़ाइद को अपनाने की ही दावत है और उनके ग़लत रवैये और माज़ी की तहरीफ़ात पर साफ साफ तंक़ीद करना है ताकि वह इस रवैये की वजूहात पर ग़ौर कर सकें और क़ुबूले हक़ उनके लिए आसान हो सके।

हिन्दू क़ौमः

हिन्दू कौन हैं और उन्की बुनियादी पहचान क्या है, इसे शायद

इस मैदान के माहेरीन भी न बता सकें अलबत्ता दामोदर वीर सावरकर से लेकर अब तक हिन्दू मुवर्रिख़ीन ने :हिन्दू' की तारीफ़ में जो कुछ फ़रमाया है उसका लुब्बो लुबाब सिर्फ़ यही है कि हिन्दू वह होता है जो दो चीज़ों पर एतेक़ाद रखता हो, पहला एक माफ़ौक़ल फ़ितरत हस्ती पर जो इस काइनात के वजूद के पीछे है और दूसरा मौत के बाद किसी न किसी रूप में एक दूसरी ज़िन्दगी पर। अगर देखा जाए तो यह दोनों बातें सिर्फ़ हिन्दूओं में ही नहीं बल्कि दुनिया के तमाम मज़हबी गिरोहों में मुशतरका तौर पर पाई जाती हैं। बहरहाल फ़ारिस ने बर्रे आज़म हिन्द में बसने वाले तमाम लोगों को हिन्दू कहना शरू किया चाहे उसका अक़ीदा जो भी रहा हो और यह लफ़्ज़ आम तौर पर जुग़राफियाई तनाज़ुर में इस्तेमाल होता रहा। फिर मुसलमानों की आमद के बाद जो मुसलमान नहीं थे उन सभी को ग़लती से हिन्दू कहा जाने लगा और धीरे धीरे हिन्दू लफ़्ज़ का इस्तेमाल अक़ाइद के एक ख़ास मजमूए का नाम ठहरा, और आज तक इसी तरह चला आ रहा है। जब हम लफ़्ज़ हिन्दू बोलते हैं और उन्हें बौध, सिख और जैनियों से अलग समझ कर बोलते हैं तो हमारी मुराद कम से कम तीन मुख़तलिफ़ अक़ाइद को मानने वाले गिरोंहों से होती है, जिन में सब से बड़ी इज्तिमाइयत वैश्नव फ़िरक़ा की है, फिर शिव का नम्बर आता है और एक बड़ी तादाद शाकत फिरका की भी है। वैश्नवी लोग 'विश्नू' को सब से बड़ा ख़ुदा मानते हैं, उसके अवतार की पूजा करते हैं, भक्ती पर ज़ोर देते हैं और जन्नत, दोज़ख़ का तसव्वूर रखते हैं। उन्की बसावट (आबादी) उमूमन भारत के शुमाली हिस्से में ज़्यादा है। शाकत काइनात की असल क़ुव्वत को औरत की शक्ल में देखते हुए और

उसकी 'प्रक्रती', दूर्गा, शक्ती के रूप में पूजा करते हैं, जादू टोना पर ज़ोर देते है। वह आम तौर पर मश्रिक़ में अकसरियत में हैं। मगर वेदान्त और वहदतुल वजूद (अदवियत) का असर इतना .ज्यादा पाया जाता है कि इन तीनों या दूसरे छोटे मज़हबी गिरोह भी इस तरह तशकी के शिकार हैं कि तमाम लोग किसी न किसी हैसियत से एक दूसरे के मज़हब की मोटी मोटी बातों पर भी एतेक़ाद रखते हैं। दौरे हाज़िर में हिन्दूओं में सैकडों इस्लाही तहरीकें चल रही हैं जिन्का मजमूई असर यह होता है कि न तो किसी ख़ास तर्ज़े फ़िक्र की तरफ़ एक हिन्दू जा पाता है और न वह अक़ाइद के जंगल में से कुछ बेहत चुन पाता है। 4000 से ज़ाइद मज़हबी किताबों के मुताला से भी यही वाज़ेह होता है कि कभी तौहीद की तहरीक नुमाया होती नज़र आती है तो फिर शिर्क का फ़रोग़ भी उन ही किताबों पर ग़ालिब नज़र आता है।

बहरहाल जब यह मसला छिडता है कि इस्लाम की रौशनी मे हिन्दूओं का क्या दर्जा मुक़र्रर किया जाए तो कभी वह काफ़िर नज़र आएंगे तो कभी मुश्रिक़, कभी मुवहिहद नज़र आएंगे तो कभी मुनाफ़िक़ और कभी उन का ताल्लुक़ अंबिया की तालीमात से नज़र आएगा तो कभी लगेगा कि ऐसी तालीमात यी उन से दूर का भी वास्ता नहीं है। इस सब के बावजूद यह सवाल हमारे सामने खडा है कि इतने बडे मज़हबी गिरोह का ज़िक्र न सिर्फ़ क़ुरआन में मौजूद नहीं है बल्कि उन के साथ किसी क़िस्म का मज़हबी तामुल भी मुनासिब नहीं समझाा गया। अपने अक़ाइद को लेकर जिस तरह हिन्दू उलझन में नज़र आते हैं उसी तरह उन से मज़हबी बुनियादों पर राबता रखने के हामी मुसलमान भी नज़र आते

हैं।

इस में कोई शक नहीं है कि जिस तरह मज़हबी किताबों की एक लम्बी फ़िहरिस्त ओर मज़हबी तहरीकात की तवील दास्तां इस मुल्क में पाई जाती है वैसी और कहीं नहीं मिलेगी। दरअस्ल हज़ारों साल की मुद्दत में होने वाली तहरीकात, अस्ल ज़बानों में मक़ामी ज़बानों में तर्जमा, इलाक़ों की तब्दिली वग़ैरा ने बहुत सी आसमानी तालीमात ओर मुक़द्दस शख़्सियात को यकसर नए क़ालिब में इस तरह ढाल दिया है कि हिन्दू मज़हबी रिवायात से सच और झूठ की पहचान ख़ूद उन के लिए मुश्किल हो गई है। मगर 660 साल के मुस्लिम दौरे हुकूमत और उस से पहले तक़रीबन इतने ही अरसा तक अरबों और अहले हिन्द के दरमियान सक़ाफ़ती रिश्तों और दौरे हाज़िर के मुख्तलिफ़ रुझहानात की गहराई में जाकर देखा जाए तो हमारे सामने ऐसे बहुत से पहलू खूल कर सामनें आएंगे जो न सिर्फ़ हमारे बाहमी रिश्तों को एक नए क़ालिब में ढालेंगे बल्कि ख़ूद हिन्दूओं को उन मज़हबी तशकी से बाहर निकालेंगे जिस में वह एक अरसे से मुबतला हैं।

हिन्दू बहैसियत अहले किताब

जब हिन्दूओं के मज़हबी अक़ाइद की रौशनी में उन से इस्लामी राह व रस्म की बात उठाई जाती है तो यह सवाल उठना लाज़िम है कि इस्लाम की रौशनी में उन्का दर्जा क्या है? आम तौर पर उन्हें अहले कुफ्र या अहले शिर्क समझकर उन से मामला किया जाता है। बाज़ क़राइन से यह लगता है कि सोचने का यह अन्दाज़ ग़लत है। नबी करीम स0 के ज़माने में उन्के सामने दो क़िस्म के लोग थे एक अहले मक्का और उन से

मन्सलिक क़बाइल, जो पढना लिखना नहीं जानते थे और कोई मज़हबी किताब भी उन की रहनूमाई के लिए मौजूद नहीं थी और वह महज़ ख़्यालात के पैरो थे। उन्हें उम्मी कहा गया। दूसरी जानिब बनी इसराईल के दो बड़े फिरक़े थे जिनके पास आसमानी किताबें मौजूद थीं जो उन्की रहनुमाई करती थीं। जहां अहले मक्का में मुवहिहद थे तो अहले किताब में खुदा तर्स लोग भी थे। शिर्क किसी न किसी रूप में दोनों में पाया जाता था। अगर अहले वतन पर नज़र डाली जाए तो उन्का शिर्क अहले मक्का के शिर्क से किसी तरह भी अलग नहीं है, वहीं उनके पास कुछ ऐसी किताबें भी हैं जिनके ज़रिए वह मज़हबी रहनुमाई हासिल करते हैं। अहले वतन में शिर्क की जड़ें काफ़ी गहरी हैं इस लिए अहले दावत उन्हें मुश्रिकीन समझने के लिए मजबूर हैं। मगर मुन्दरजा ज़ैल हक़ाइक़ की रौशनी में हिन्दूओं को या कम से कम उन के बाज़ तबक़ात को अहले किताब समझाा जा सकता है।

1–हिन्दूओं का दावा है कि उनके पास आसमानी किताबें हैं। मसलन एप वैदों को शरोती ग्रन्थ तस्लीम करते हैं, यानी एप बराहे रास्त आवाज़ की शक्ल में तक़रीबन 315 रीशियों पर नाज़िल हुए और रिशियों ने उन्हें सुन कर याद रखा और लोगों के बीच पहूंचाया। हुस्ने इत्तिफ़ाक़ से हज़रत अबू ज़र ग़िफ़ारी की एक रिवायत में भी रसूलों की कल तादाद 315 ही बताई गई है। वैदों के इलावा समहयता की दूसरी किताबों मसलन उपनशदों को भी 'अपोर वषय' माना जाता है। हिन्दूओं में राइज छह अहम मसालिक में वैदों की इस हैसियत को तस्लीम किया जाता है। वैदों के नुज़ूल का दौर 1000–2500 मसीह क़ब्ल माना जाता है।

मुसलमानों में वैदों को इस लिए आसमानी किताबें मानने से इन्कार करने का रुझान रहा है क्योंकि उनका ज़िक्र क़ुरआन करीम में नहीं है लेकिन इस इन्कार का यह मतलब भी नहीं है कि वह आसमानी किताबें नहीं हो सकतीं। गुज़िश्ता अरसा में शम्स नवैद उसमानी और उन्के मोअ़तक़ेदीन ने इस से आगे बढकर यह बात कही है कि क़ुरआन में वैदों का ज़िक्र सुहफ़े ऊला (20:133) और ज़ुबुरुल अव्वलीन (26:196) के नाम से मौजूद है। उन्का मानना है कि न सिर्फ़ वैदों के मज़ामीन और क़ुरआन की तालीमात में बडी हद तक मुमासलत पाई जाती है बल्कि चूंकि उन्का ज़िक्र क़ुरआन ने नाम के साथ किया है लिहाज़ा उन्हें आसमानी कुतुब तस्लीम किया जाना चाहिए। (अगर अब भी न जागे तो, पृ.69-95 वैदों की क़दामत के दावे, उन्की मज़हबी तालीमात और इस्लामी तफ़ासीन में उन आयात पर मज़ीद तहक़ीक़ के ज़रिए और किसी मुख़तलिफ़ ख़्याल की अदमे मौजूदगी में इसमें कोई मुज़ाइक़ा नहीं है कि ता वक़्ते कि कोई और सुबूत सामने आए, वैदों या उन्के एक हिस्सा को तहरीफ़ शुदा आसमानी कुतुब माना जा सकता है।

2- किसी क़ौम की मज़हबी रिवायत और मारूफ़ मुक़द्दस किताबों का ताल्लुक़ माज़ी के किसी नुज़ूल आसमानी से है या नहीं, यह देखने के लिए जो पैमाना हो सकता है उसकी रू से भी इस मामले पर ग़ौर किया जा सकता है। हिन्दू माशरे में पाए जाने वाले वाज़ेह शिर्क के बावजूद उनकी मुक़द्दस किताबों में तौहीद की तालीमात बिखरी हुई नज़र आती है। ब्रहम, ऊम, ईश्वर, प्रमेशवर, प्रभू, पोरश, प्रमात्मा, भगवान वगैरा नामों से एक एसी मा फ़ौक़ल फ़ितरत हस्ती को आम तौर पर तस्लीम किया

जाता है जो कि काइनात का मोजिद ही नहीं बल्कि उसका परवरदिगार और फ़रमांरवा भी है, हालांकि भगवान ऐसे इन्सानों के लिए भी इस्तेमाल होता है जिन के बारे में यह गुमान हो कि उन्हें इसी ज़िन्दगी में निजात मिल चुकी है। इसी तरह जन्नत व दोज़ख़ (स्वर्ग और नर्क), फ़रिश्तों (देवता), और सज़ा व जज़ा (क्रम) के मुताल्लिक़ बहुत सी बातों में बाज़ हिन्दू अक़ाइद इस्लाम से क़रीब नज़र आते हैं हालांकि जिन्दूओं में नुबूव्वत का वाज़ेह तसव्वुर नहीं पाया जाता है मगर इनमें उसका यकसर इन्कार भी नहीं है। मसलन वह रिशियों की मुक़द्दस हैसियत को मानते हैं। संस्कृत में रीषी के तक़रीबन वही माना हैं जो अरबी में नबी के हैं यानी ग़ैब की एसी बातों को बताने वाला जो आम इन्सानों में मुशाहदे में आना मुश्किल हो। तारा नाथ की संस्कृत लुगत में रीशी के माना हैं ''वह जो अपने रूहानी इल्म से संसार को उसके माद्दी वजूद से आगे देख सके'' रीशी लफ़्ज़ उसके मसदर ''रिश'' से बना है जिस का मतलब है ''आगे जाने या बढने वाला'' और रसूल लफ़्ज़ अपने मसदर ''रुसुल'' से बना है जिस के माना हैं ''भेजा गया''। इस तरह यह दोनों इस्तिलाहात तक़रीबन एक ही मक़सद के लिए इस्तेमाल होती हैं। मज़ीद यह कि जिस तरह क़ुरआन से पहले की आसमानी किताबों में नबी आखिरुज़्ज़मां के तशरीफ़ आवरी की पेशनगोईयां पाई जाती हैं, वैसी ही बशारतें वैदों और दूसरी किताबों में भी मिलती हैं, जहां ''निशन्स'' या ''कलकी अवतार'' के रूप में आप का इन्तिज़ार था।

3–जिस तरह वहदतुल वजूद के फितने में कई मुस्लिम ज़ाहिद फंस गए थे उसी तरह हिन्दूओं में भी अदवियत के नज़रिया ने ख़ालिस

तौहीद पर उन के अमल को मतास्सिर किया है। बारहवीं सदी के जय्यद मुफ़क्किर अल बेरूनी ने अपनी मशहूर किताब ''तारीख़े हिन्द'' में तबसरा किया है कि ''हिन्दूओं का ख़ुदा पर ईमान है किः वह एक है, बे इन्तिहा है, अज़ल से है और हमेशा रहेगा, ख़ूदमुख़तार है, हकीम है, शय क़दीर है, ज़िन्दा और जावेद है, हयात बख़्श है, हकीम है, साबिर है, आप ही हैरत अंगेज़ क़ुव्वतों का मालिक है, हर क़िस्म की तमसील और ग़ैर तमसील से मावरा है, न वह किसी की तरह का है और न कोई उस जैसा है''। उनका ख़्याल था कि हिन्दूओं में जो आलिम हैं वह ऐसे ही ख़ुदा की इबादत करते हैं जब्कि आम हिन्दू हर किसी चीज़ की प्रस्तिश में मुबतला रहते हैं। उनका और उनके शैख़ अबू सहल का ख़्याल था कि हिन्दूओं के अक़ाइद के सिलसिले में मुस्लिम उलेमा में एक ना मुनासिब तास्सुब पाया जाता है। असग़र अली इन्जिनियर के मुताबिक़ अठठारहवीं सदी के मशहूर सूफ़ी आलिम मज़हर जान जानां ने अपने एक ख़त में लिखा था ''हिन्दूओं को काफ़िर नहीं कहा जा सकता क्योंकि काफ़िर वह है जो अपनी हक़ीक़त को छुपाता है जब्कि हिन्दूओं के पास वैदों जैसी मुक़द्दस किताबें हैं जो अल्लाह की नाज़िल करदा सच्चाई की मज़हर हैं, हिन्दूओं का तौहीद पर ईमान है यानी ईश्वर के रूप में एक ऐसे ख़ुदा पर ईमान जो सिफ़ात और शक्ल दोनों से मावरा हो''। एक मज़मून निगार ख़ूरशीद ईमाम ने अपने हालिया मज़मून ''हिन्दूओं की मुक़द्दस किताबें-एक तारुफ़'' में उन हवालों का ज़िक्र करते हुए कि वैदों या दीगर किताबों में तौहीद की क्या तालिमात हैं, यह लिखा हैः ''हालांकि मुसलमानों की किसरियत वेदों के आसमानी किताबें होने के बारे में या तो ख़ामोश है या इन्कारी,

मगर वेदों के तौरेत ज़ुबूर और इन्जील की तरह आसमानी किताबें होने के कई सुबूत मौजूद हैं''। उन हवालों में अगर उलेमा-ए़-दिमशक़ के आठवीं सदी के उस फ़तवे को भी पेशे नज़ रखा जाए़ जो उन्होंने सिंध के हिन्दूओं और बौधों के अहले किताब होने के सिलसिले में सादिर किया था तो ऐसा महसूस होता है कि हिन्दूओं में पाई जाने वाली तौहीद और उन्की ख़ुसूसी हैसियत के बारे में मुसलमानों मे एक ए़तेमाद मुसलसल मौजूद रहा है।

यहूदियों में हज़रत उज़ैर को अल्लाह का बेटा माना जाता है और ईसाइयों में हज़रत ईसा मसीह को। जीनद ओस्था की तालीमात में अहवर माजिद (ख़ुदा) और अहीरमान (शैतान) की ताक़त तक़रीबन बराबर मानी जाती है और उस पर ईमान रखने वाले मजूसी आग की पूजा करते हैं। इन तीनों मज़ाहिब के मानने वालों में कई क़िस्म की मुश्रिकाना रिवायात के बावजूद चन्द हक़ाइक़ के पेशे नज़र उन्हें अहले किताब तस्लीम किया जाता है, यह हक़ाइक़ हैं एक मा फ़ौक़ल फ़ितरत ख़ुदा पर उनका ईमान, रहनुमाई के लिए किसी मुक़द्दस इन्सानी हस्ती की ज़रूरत जो उसे ख़ुदा तक पहूंचाने का ज़रिया हो, किसी आसमानी किताब का हिदायत के लिए ज़रूरी समझा जाना, ज़िन्दगी के बाद मौत पर यक़ीन, जज़ा व सज़ा पर ईमान, वगैरा। इन उमूर में तौरेत, इन्जील और जीनद पर ईमान रखने वाले लोगों के साथ साथ वेद के मानने वालों के दरमियान भी यकसानियत पाई जाती है, चाहे वह क़ुरआन के मुताबिक़ सहीह अमल हो या फिर ग़लत, अपनी तमाम तर गुमराहियों और मुबय्यन शिर्क पर अमल के बावजूद यहूद, नसारा और मजूसियों को 'अहले किताब' तस्लीम किया जाता है।

लिहाज़ा हिन्दूओं मे वेदों के मानने वाले और सगून-निरा कार ईश्वर पर ईमान रखने वालों को यही दर्जा दिया जाना चाहिए।

4- आम तौर पर इस्लाम का जब तसव्वुर आता है और उस से जुड़े हुए अंबिया का पसे मन्ज़र ज़ेहन में जागुज़ीं होता है तो हमारे सामने महज़ मश्रिक़े वुस्ता का इलाक़ा रहता है जो उर, फ़लस्तीन, मिश्र और मक्का मुअज़्ज़मा की चौहदी के दरमियान घोमता नज़र आता है। और इसका वास्ता भारत से तो किसी हाल में नज़र नहीं आता। हालांकि बाज़ रिवायात के मुताबिक़ जिन्हें ज़ईफ़ समझा जाता है, भारत वह मुल्क है जहां अल्लाह के पहले नबी हज़रत आदम अलैहि0 न सिर्फ जन्नत से उतारे गए बल्कि यह इलाक़ा उनकी सरगरमियागें का एक बड़ा मर्कज़ रहा है। भोपाल के मशहूर ज़माना शहर क़ाज़ी सय्यद आबिद अली वजदी की मशहूर किताब 'हिन्दूस्तान इस्लाम के साए में' भारत को मुसलमानों का आबाई वतर क़रार देती है। मौसूफ ने हज़रत आदम अलैहि0 के भारत के हिस्से सन्दलीप या दक्कन में नुज़ूल के क़ाइल जिन बुर्ज़ुगों के नाम गिनाए हैं उनमें हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास रज़ि0, इब्ने कसीर, इमाम हसन बसरी, अलाउद्दीद बग़दादी, नसरुद्दीन क़ाज़ी बैज़ावी, अल्लामा शैख़ सुलैमान जमल, अल्लामा अबुल आस कज़माई, सुयोती, अल्लामा शिब्ली नुमानी, अल्लामा सय्यद सुलैमान नदवी, और सय्यद ग़ुलाम नबी आज़ाद बलगिरामी, वग़ैरा शामिल हैं। इन में से अल्लामा बलगिरामी ने तो यहां तक लिखा है कि ''जब हज़रत आदम अलैहि0 हिन्दूस्तान में उतरे तो वही ईलाही ने उन्की तौबा की क़ुबूलियत की बशारत दी। और इस सरज़मीन पर सुकूनत के लिए रहनुमाई और हिदायात अता फ़रमाई तो इस से हमारे

मुल्क हिन्दूस्तान को सब से पहले वही ईलाही का मुहिब या जाए नुज़ूल होना साबित होता है।'' (पृः 125)

5- हज़रत आदलम अलैहि0 के बाद दो और अंबिया शीश और हज़रत अय्यूब अलैहि0 का ताल्लुक़ भी सरज़मीने हिन्द से रहा है। हज़रत शीश ग़ालिबन बाइबल के हज़रत शीथ Seth हैं जो हज़रत आदम अलैहि0 के तीसरे बेटे थे और जिन से अंबिया का सिलसिला जारी रहा क्योंकि हाबील की वफ़ात और क़ाबील का उनके क़त्ल में मुलव्विस होने की वजह से हज़रत आदम अलैहि0 के दो बड़े बेटों से नुबूव्वत का सिलसिला मुमकिन नहीं था। मौलवी अब्दूलकरीम साहब ने अपनी किताब मदीनतुल औलिया में हज़रत शीश का तफ़सीली ज़िक्र किया है और उन्ही क़ब्र अयोध्या में बताई है। उनके इलावा उन्के उनके बारे में तवारीख़ अंबिया, अल्लामा शहाबुद्दीन दौलताबादी की किताब खुलासतुल वक़ाई, अल्लामा अबुल फ़ज्ल की किताब आईनाए अकबरी, मुहद्दिस देहलवी की किताब खुलासतुल अहादीस, मौलवी सय्यद नासिरुद्दीन नवेद जावेद की किताब सिराजुल हिदाया, सय्यद आबिद हुसैन सहरामी की किताब तारीख़ जाइस, तवारीख़े नौ, अल अश्रर जुग़राफ़िया मुल्क औध वग़ैरा में ज़िक्र हुआ है।

आईनए अकबरी में लिखा है कि ''हज़रत शीश और हज़रत अय्यूब की क़ब्रें औध में है। ''सिराजुल हिदाया'' में है ''दर हिन्द शहर पुश्त की उरा औध गोसेंद मियाने दो बलन्दी क़ब्र दो नबी शीश व अय्यूब अलैहि0''। इन रिवायात से ज़ाहिर होता है कि भारत की सर ज़मीन न सिर्फ हज़रत आदम अलैहि0 की सरगरमियों का एक अहम मर्कज़ रही है

बल्कि उनके साहबज़ादे हज़रत शीश (जिन्हें हिन्दू गनेश के रूप में जानते हैं) और उनके पोते वग़ैरा भी यहां काफ़ी अर्से तक दावते हक़ का काम करते रहे हैं और उनकी तदफ़ीन भी यहीं हुई और अयोध्या को जो मज़हबी हैसियत हासिल है उसकी असली वजह भी यही दोनों अजदाद इन्सानियत है। वेदों की रिवायात के मुताबिक़ हज़रत शीश का नाम उतरी और हज़रत अय्यूब का नाम अंगरी है जिन्हें शुरू के दस राजाओं में शुमार किया गया है। मज़ीद यह कि ऐसे हवाले मिलते हैं जिन से यह गुमान होता है कि .हरत आदम अलैहि0 और उन्के बेटों का क़िस्सा ग़ैर महसूस तरीक़ा से हिन्दूओं की क़दीम किताबों में दर्ज है जिस के मुताबिक़ सवैम्भू मनू के बेटे कपिल ने शोंक (मक़तूल) को मिना नामी जगह पर हलाक किया था और बाग़ी हो गया था और उसी ने शिव लिंग की इबादत का चलन दिया और मनू के सिखाए हुए योगा का कई क़िस्म के योगा में तब्दील कर दिया। अगर बाईबल में दर्ज हज़रत आदम अलैहि0 की उम्र (930), हज़रत शीश की उम्र (912) और हज़रत अय्यूब की उम्र (905) को जोड़ा जाए तो इन रिवायात के मुताबिक़ यह मुक़द्दस ख़ानदान भारत की सरज़मीन पर एक अर्सा तक सरगरम रहा है। हालांकि इस ख़ानदान के बाद के मुक़द्दस लोग जिनका नाम संसकृत में पुलस्तिया, पुलाहा, विशिष्ठा, भ्रुगो, नारद, वग़ैरा हैं का ज़िक्र पाया जाता है जो वयोत्सया मनू (नूह) से पहले के ऋषि हैं मगर चूंकि उनके सिलसिले में मुस्लिम उलेमा में आम तौर पर ख़ामोशी है और इस में कई तहक़ीक़ तलब मसाइल सद्दे राह हैं इस लिए यह सिलसिला हज़रत अय्यूब तक महदूद रखा जाता है।

6- मशहूर अरब जुग़राफ़िया नवेस अल्लामा याक़ूत हमवी ने

लिखा है कि युक़ेर बिन युक़तैन बिन हाम बिन नूह की अवलाद में सिंध और हिन्द दो भाई थे जिनके नाम पर यह दोनों मुल्क मशहूर हुए (मुअज़मुल बुलदान पृ 291) गोया भारत को अरबी रिवायात में हिन्द हस लिए कहा जाता है क्योंकि यह नूह अलैहि0 के बाद चौथी पीढी की हस्ती हिन्द के नाम से मशहूर हुई। केरल के मुवर्रिख टी मुहम्मद ने अपनी किताब 'वन गाड वन करीड' One God One Creed में दर्ज किया है कि दराविड क़ौम मज़कूर युक़ेर की अवलाद हैं जो कि सिंध तहज़ीब के एक अहम सुतून थे। इन रिवायात से हज़रत नूह अलैहि0 और उनके अहले ख़ानदान का ताल्लुक़ भारत से जुडा नज़र आता है। बक़ौल मौसूफ़ के नूह अलैहि0 और मनू के नामों में बडी हद तक मुमासलत पाई जाती है। नाम की यकसानियत के इलावा दोनों के इर्द गिर्द दास्तां तक़रीबन मिलती जुलती है। इस मौज़ू पर शम्स नवेद उस्मानी और उनके हलक़ा-ए-असर में जो तहरीरें सामने आई हैं उनसे भी यही बात साबित होती है। ए जे ऐ डुबसिस ने अपने चालीस साला मुताला के बाद अपनी जो मशहूर किताब Hindu] Manners] Customs and Ceremonies लिखी है उसमे वह रक्म तराज़ हैं ''..... मुख़तसर यह कि एक मशहूर शख़्सियत जिन से हिन्दूओं को बहुत अक़ीदत है और जिसे वह महानुव के नाम से जानते हैं (सैलाब की) तबाही से एक कश्ती के ज़रिए बच निकली जिसमें सात मशहूर ऋषि भी सवार थे। महानुव दो अलफ़ाज़ का मुरक्कब है। महा के माना 'अज़ीम' है और 'नो' बिला शक व शुबा नूह ही हैं। (पृ 49)''। मारकण्डे और भागवत पर उन में इस सैलाब का ज़िक्र तफ़सील से आया है। सिलसिला अंबिया के ज़िम्न में सूरा

मरयम की आयत (19: 58) ''मिन जुमला अंबिया आदम अलैहि0 से थे और बाज़ उनकी नस्ल से थे जो नूह के साथ कश्ती में सवार थे और बाज़ इब्राहीम और याक़ूब की नस्ल से हैं'' के मुताला से यह बात सामने आती है कि आदम अलैहि0 से नूह अलैहि0 तक अंबिया का एक सिलसिला था और उसके बाद दो अलग सिलसिले एक अवलाद नूह से और दूसरा अवलाद इब्राहीम से जारी हुआ। अवलाद इब्राहीम में बनी इसराईल के तमाम अहम अंबिया से हम वाक़िफ़ हैं जिनका सिलसिला आं हज़रत स0 ता जारी रहा मगर अवलादे नूह के नबियों से हम वाक़िफ़ नहीं हैं बल्कि क़ौमे नूह और उसकी तारीख़ और किताबों से भी हम आम तौर पर नावाक़िफ़ हैं या बेयक़ीनी में मुबतला हैं। अबू सईद खुदरी रज़ि0 की रिवायत करदा एक हदीस के मुताबिक़ रोज़े आख़िरत क़ौमे नूह अपने नबी को नहीं पहचान पाएगी। आज भी अगर हिन्दूओं से पूछाा जाए कि तुम्हारा नबी कौन है तो वह इसका जवाब देने से क़ासिर रहेंगे। मगर जिस तरह रोज़े आख़िरत उम्मते मुहम्मदिया क़ौमे नूह में शहादत हक़ की गवाही देगी उसी तरह आज भी वह उसे अपने खुए हुए नबी की सहीह तालीमात से रोशनास करा सकती है। शाह वलीयुल्लाह, मौलाना सुलैमान नदवी, मौलाना उबैदुल्लाह सिंधी उन अशख़ास में से हैं जो नूह और मनू में मुमासलत के क़ाइल थे।

7- क़दीम इस्लामी लिट्रेचर में अहले हिन्द के अक़ाइद के मुताल्लिक़ बहुत कम मालूमात दस्तेयाब है, ताहम साईबीन के मज़हबी एतेक़ादात के बारे में जो कुछ नक़ल किया जाता है वह हिन्दूओं के मजमूई मज़हबी तसव्वुरात से हम आहंग नज़र आता है, हालांकि ऐसा

कोई बराहे रास्त सुबूत दस्तेयाब नहीं है जिस से यह साबित हो कि साईबीन और हिन्दू एक ही क़ौम हैं मगर दोनों के एतेक़ादात में मुमासलत की बुनियाद पर दोनों की शरई हैसियत के बारे में एक मुसबत हुक्म पर ग़ौर किया जा सकता है।

हज़रत उबैदुर्रहमान बिन औफ़ रज़ि0 ने रिवायत किया है कि हुज़ूर अकरम स0 ने फ़रमायाः मजूसियों के साथ अहले किताब जैसा सुलूक करो। यह बात तस्लीम शुदा है कि मजूसियों की मज़हबी किताब ज़ीनद ओसता का ज़िक्र क़ुरआन में नहीं है और न उनके किसी नबी का ज़िक्र क़ुरआन में हुआ इसके बावजूद उन्हें अहले किताब की तरह समझाा गया है। मज़ीद यह कि मजूसी आग की पूजा करते थे और इस लिहाज़ से मुश्र्कि थे मगर फिर भी उन्हें एक ख़ास दर्जा दिया गया। जहां साईबीन का ज़िक्र अहले किताब के साथ क़ुरआन में तीन बार आया वहीं मजूस का ज़िक्र सिर्फ़ एक बार (22:17) आया है। अगर देखा जाए तो हिन्दूओं में साईबीन और मजूस दोनों की ख़ुबियां पाई जाती हैं यानी हिन्दू आग की पूजा भी करते हैं और वह सितारा प्रस्त भी हैं।

क़ुरआन करीम की तीन आयात 2: 62, 5: 69 और 22: 17 में अहले किताब यहूद व नसारा के साथ साथ साईबीन का ज़िक्र आया है और इसी लिए उन्हें अहले किताब में शुमार किया जाता है या उन्हें 'मिस्ले अहले किताब' कहा जाता है। साईबीन के सिलसिले में मुख़तलिफ़ रिवायात पाई जाती हैं। उन में से कुछ वह हैं जो ईराक़ में मोसल के आस पास बस गए और नदी के पानी में बार बार नहाने को पसन्द करते थे। उन में से कुछ हरीन के आस पास बस गए और कुछ यमन में जो

कि बुनियादी तौर पर सितारा प्रस्त थे। शैखुल हिन्द हज़रत महमूदुल हसन के मुताबिक़ यह फ़रिश्तों की प्रस्तिश करने वाले लोग हैं जो हज़रत इब्राहीम को मानते हैं और ज़ुबूर पढ़ते हैं।

मुख्तलिफ़ तफ़सीरी लिट्रेचर से यह बात सामने आती है कि साईबीन बुनियादी तौर पर सितारा प्रस्त, मलाइका प्रस्त, बार बार नहाने वाले, और माइल होने वाले और झुकने वाले बताए जाते हैं। साईबीन के बारे में हज़रत उमर रज़ि0, इमाम अबू हनीफ़ा रह0, इमाम इस्हाक़, इमाम क़ुरतुबी, अल्लामा इब्ने तैमिया, इमाम ग़ज़ाली, इमाम राग़िब, इब्ने जरीर, इब्ने कसीर, वग़ैरा के अक़वाल दर्ज हैं। तफ़सीर इब्ने कसीर में अब्दुर्रहमान बिन ज़ैद का यह क़ौल दर्ज है कि साईबीन अपने आपको हज़रत नूह अलैह0 के दीन पर बताते हैं। आठवीं सदी के मुवर्रिख़ अल ख़लील अहमद अल फ़रहीदी ने भी साईबीन के बारे में लिखा है कि वह हज़रत नूह को अपना नबी मानते थे।

चूंकि साईबीन को अहले किताब के ज़ुमरे में शामिल किया गया है जो कि क़ौमे नूह में से हैं, लिहाज़ा क़ौमे नूह के तमाम अफ़राद को यह दर्जा शरअन हासिल हो जाता है। बज़ाहिर नूह अलैहि0 पर नाज़िल किसी किताब का ज़िक्र क़ुरान में नहीं है इस के बावजूद साईबीन को अहले किताब के ज़ुमरे में दाख़िल किया गया है तो यह कोई सख़्त शर्त नहीं है कि किसी मज़हबी गिरोह को हपे अपनी मज़हबी कुतुब रखता हो मगर उसका नाम क़ुरान में न पाया जाए तो अहले किताब में शुमार न किया जाए। जो अक़ाइद साईबीन के बताए गए हैं वह भी इस बात का इशारा करते हैं कि हिन्दू क़ौम का बड़ा हिस्सा साईबीन हैं क्योंकि ज्योतिश के

रूप में सितारा प्रस्ती, देवियों के रूप में फ़रिश्तों की पूजा और ग़ुस्ल पर ज़ोर जितना ब्राहम्नों में पाया जाता है वैसा कहीं और नज़र नहीं आता।

इब्ले क़य्यिम ने अहकामुज़्ज़िम्मा के तिहत साईबीन के अक़ाइद पर जो तफ़सील बयान की है वह क़ाबिले ज़िक्र है, जो हिन्दूओं की शरई हैसियत मुताय्यन करने में रहनुमा हो सकती हे। मौसूफ़ ने जो कुछ फरमाया उसका खुलासा हय है कि यह यहूद व नसारा से पहले के लोग थे, जिन की रियासत हारान में भी, वह किताबें लिखते थे और अहले इल्म थे, उन में बडी तादाद फ़लसफ़ियों की थी जिन्होंने तफ़सीली मज़ामीन लिखे जिन का ज़िक्र फ़लसफ़ियों पर तहक़ीक़ करने वालों ने अपने हवालों में किया है, न उन्होंने नबियों का इन्कार किया है और न उन की पैरवी को फ़र्ज़ तस्लीम किया है, उन के नज़दीक अंबिया की पैरवी करने वाले राहे रास्त पर हैं और अज़ाब से महफ़ूज़ हो गए, मगर ऐसे लोग जो कि नबियों जैसे रास्ते पर अपने फ़हम और इदराक से गामज़न हैं वह भी कामियाब हैं, उन के नज़दीक नबियों की दावत बरहक़ है अगर निजात के लिए कोई एक मख़सूस तरीक़ा मुताय्यन नहीं है, उनका मानना था कि काईनात के ख़ालिक़ और परवरदिगार तक हमारी बराहे रास्त रसाई आसान नहीं है इस लिए मुराक़बे में दरमियान के वसीलों पर ग़ौर करते हुए उस तक पहूंचा जा सकता है।

इब्नुल क़य्यिम ने मज़ीद फरमाया कि साईबीन के अक़ाइद व फ़लसफ़ियों का मुताला करने वाले उलेमा ने नक़्ल किया है कि इस क़ौम में ऐसे लोग भी हैं जो अल्लाह पर उस के नामों और सिफ़ात के साथ ईमान रखते थे और फ़रिश्तों, नबियों और यौमे आख़िरत पर ईमान रखते

थे, उन में से कुछ ऐसे भी थे जो नबियों की तालीमात के एक हिस्से पर ईमान रखते थे और उनकी पैरवी करते थे जो उन के अपने ख़्याल और तफ़क्कू से उन्हें सहीह लगता था, बुनियादी तौर पर दूसरे मज़ाहिब में से जो उन्हें मुनासिब लगता था उसको लले लेते थे और किसी ख़ास मज़हबी तरीक़ा को प अपना क़रीबी समझते थे और न दूर, उन्हें साईबीन इसी लिए कहते थे क्योंकि वह किसी ख़ास दीन की पैरवी करने के बजाए उनमें से जिस अमल को बेहतर समझते थे उसे इख़्तियार कर लेते थे।

तफ़सीर शैबान में क़तादा रक़्म तराज़ हैं का साबी लोग फ़रिश्तों की इबादत करते थे। अब्दुर्रहमान बिन ज़ैद (मः 897) ने ज़िक्र किया है कि जज़ीरतुल मूसल के साईबीन कहते थे कि ''कोई ख़ुदा नहीं है, पस एक ही है''। इसी वजह से मुश्रिकीने मक्का अल्लाह के रसूल और सहाबा किराम को साईबीन में शुमार करते थे क्योंकि तौहीद के इज़हार के लिए यही कलिमा उन की ज़बान पर रहता था। ज़ियाद बिन आबदी (मः 672) ने लिखा है कि साईबीन नबियों पर ईमान रखते थे और पांच वक़्त की नमाज़ पढ़ते थे। मुजाहिद बिन जरीर (मः 772) का ख़्याल था कि साईबीन किसी ख़ास दीन की पैरवी नहीं करते हैं और यहूद और मजूसियों के दरमियान हैं। हसन बसरी (मः 828) की राय है कि साईबीन ज़ुबूर की तिलावत करते हैं और फ़रिश्तों की इबादत करते हैं। क़तादा बिन दमामा (मः 736) ने फरमाया है कि साईबीन फ़रिश्तों की इबादत करते हैं, ज़ुबूर की तिलावत करते हैं और पांच वक़्त की इबादत उनका मामूल है, मज़ीद यह कि वह सूरज को भी पूजते हैं। ख़लील बिन अहमद (मः 786) का ख़्याल था कि साईबीन का ताल्लुक़ हज़रत नूह से था।

हालांकि कई मुफ़स्सिरीन और मुहद्दिसीन साईबीन को यहूदियों या ईसाइयों का एक फ़िरक़ा समझते थे, मगर दूसरे मुहक़्क़िक़ीन का ख़्याल था कि ऐसा नहीं है मसलन मुजाहिद और इब्ने कसीर, अल क़ुरतुबी, वग़ैरा की राय है कि यह क़ौम हज़रत नूह को अपना नबी मानती है, अबू यूसुफ़ और इब्ने हसन का ख़्याल था कि यह लोग सितारा प्रस्त थे और इन्सानी ज़िन्दगी प्रस्तारों के असरात के क़ाइल थे, इस्लामी मराजे और क़ुरान की इब्तिदा पर तहक़ीक़ करने वाले मग़रबी मुसन्निफ़ ड.ब्लयू ऐ टी कलेयर टीसडल W. St. Clair&Tisdall के मुताबिक़ साईबीन 30 दिन के रोज़े रखते थे और ईद मनाते थे जिस में अपने अजदाद की रोहों के लिए दुआ करते थे, मगर इस में सजदा नहीं करते थे। मौसूफ़ यह भी मानते थे कि वह हज़रत ईसा और इदरीस के पैरू भी थे जब्कि कुछ माहरीन का ख़्याल था कि साबी नाम हज़रत आदम अलैहि0 के पूते सबी से माख़ूज़ हे।

इन तफ़सीलात से यह यक़ीनन ज़ाहिर होता है कि हिन्दूओं का साईबीन से बराहे रास्त ताल्लुक़ साबित हो या न हो, मगर दोनों के हालात और अक़ाइद में बडी हद तक मुनासिबत पाई जाती है। साबियों की तरह हिन्दू भी देवियों के रूप में फ़रिश्तों की पूजा, सितारा प्रस्ती, निजात के लिए मुख़तलिफ़ रास्तों के वजूद, फ़लसफ़ों की पैरवी करने, तफ़सीली मज़हबी किताबें लिखने और पढने, रूह प्रस्ती, वग़ैरा के क़ाइल हैं। हिन्दू भी मनू की शक्ल में हज़रत नूह से अक़ीदत रखने और शिव के रूप में आदम को मानने और सूरज की पूजा करने वाले हैं। साबी के क़दीम माना में उन्हें पानी में ग़ोता लगाकर नहाने वाला बताया गया है

और हिन्दूओं में भी हय तरीक़ा नुमाया तौर पर मौजूद है। साबी की तरह हिन्दूओं में भी चन्द्रायन वरत की शक्ल में कए क़मरी माह के रोज़े का ज़िक्र है। लिहाज़ा शरीयत में जो हुक्म साईबीन के लिए है वही हुक्म हिन्दूओं के लिए भी होना चाहिए।

9- प्रिंस तलाल बिन वलीद स्कूल आफ इस्लामिक स्टाडीज़, हार्वड यूनिर्वसिटी के वीज़ीटिंग फेलो डा0 क़ासिम रशीद ने अपने एक हालिया मज़मून में दो हवालों का ज़िक्र किया है जिन में श्री क्रिश्न को नबी बताया गया है। उन में से एक के बारे में हदीस होने का गुमान है और दूसरे में मौलाना क़ासिम नानौतवी रह0 के इज़हारे .ख्याल का ज़िक्र है। उन्होंने दलामी की किताब फिरदौसुल अकबर की एक रिवायत नक्ल की है: **كان فى الهند نبى اسود اللهون اسمه كهينا** ''हिन्द में एक नबी आया था जो सियाह रंग का था और उसका नाम कान्हा था''। यहां कहीना से मुराद कन्हिया या क्रिश्न से लिया गया है। शाह जहांपूर मुनाज़रे के हवाले से मुहक्क़िक़ कहता है कि मौलाना नानौतवी की राय थी कि ''शवाहिद और मज़कूर रिवायत की रू से श्री क्रिश्न एक हक़ीक़ी नबी लगते हैं''। मौलाना अबूल हसन अली नदवी ने एक बार फरमाया था कि ''राम और श्री क्रिश्न शायद अपने दौर के नबी थे मगर यह बात वसूक़ के साथ तस्लीम नहीं की जा सकती, क्योंकि क़ुरान इस सिलसिले में ख़मोश है।'' अठठारहवीं सदी के मशहूर सूफ़ी आलिम मज़हर जान जानां इन दोनों शख़्सियात को नबी तस्लीम करते थे। उलेमा-ए- फ़िरंगी महल के बारे में मशहूर है कि वह श्री क्रिश्न को नबी तस्लीम करते थे। कुछ दानिश्वर श्री क्रिश्न और हज़रत मूसा अलैहि0 की ज़िन्दियों में पाई जाने

वाली मुमासलत को भी ज़ेरे बहस लाते हैं। इन तमाम हवालों को यहां पेश करने की ग़रज़ महज़ यह ज़ाहिर करना है कि गीता और श्री क्रिश्न के ताल्लुक़ से मुस्लिम माशरे में हमेशा से दिलचस्पी रही है और ख़ास तौर पर यह देख कर कि यह गीता कीतालीमात का क़ुरान की बुनियादी तालीमात से इख़्तिलाफ़ होने के बावजूद दोनों में बहुत कुछ मुमासलत भी पाई जाती है जो कि हिन्दूओं के बाज़ तबक़ात को इस्लाम से क़रीब कर देती है।

11- इस मामले में एक और तरीक़ा से भी रौशनी डाली जा सकती है। क़ुरान में 'उम्मी' लफ़्ज़ दो जगह इस्तेमाल हुआ है और दोनों जगह वह किताब का इल्म नहीं रखने के माना में इस्तेमाल हुआ है, सूरा बक़रा आयत 78 में फरमाया गया है किः ''उन में (यहूद) में बाज़ ऐसे जें जो किताब का इल्म नहीं रखते हैं और सिर्फ ज़न की पैरवी करते हैं''। एक और जगह सूरा जुमा आयत 2 में इर्शाद हुआ हैः ''वही तो है जिसने उन बे किताब लोगों (उम्मियों) के दरमियान एक पैग़म्बर भेजा है जो उनके सामने (उस किताब) की आयतें पढ कर सुनाता है'' ज़ाहिर है कि क़ुरान के नज़दीक ''उम्मी'' वह शख़्स है जिसे किसी आसमानी किताब का इल्म न हो, और जिसे किसी आसमानी किताब का इल्म होगा वह किताब वाला कहलाएगा। यहूदी अहले किताब हैं और उनमें अक्सर तालीम याफ़ता भी थे मगर फिर भी उन में से कुछ लोग किताब का इल्म नहीं रखने की वजह से :उम्मी' क़रार दिए गए, वहीं मक्का के लोग जो किताब का इल्म नहीं रखने की बुनियाद पर :उम्मी' क़रार दिए गए थे उन्हें अल्लाह के रसूल के ज़रिए किताब का इल्म दिया जा रहा है, इस

लिए उन की हैसियत :उम्मी' से 'किताब का इल्म रखने वाले और उन की पैरवी करने वालों में' तब्दील हो रही थी।

आम तौर पर 'उम्मी' के माना अनपढ़ और ना .ख्वानदा लिया जाता है, मगर क़ुरान की यह आयतें इसे और कई मानों में इस्तेमाल करती नज़र आती हैं, जिस रू से किसी आसमानी किताब का इल्म न रखने वाले लोग या क़ौम 'उम्मी' कहलाएंगे। अरबी लुगत में 'उम्मी' लफ्ज़ जहां अनपढ और ना .ख्वानदा लोगों के लिए ब्यान किया गया है वहीं अल बैज़ावी के मुताबिक़ इस के एक माना यह भी दर्ज हैं कि ऐसे लोग जिन के पास कोई आसमानी किताब न हो।

इस लिए नुज़ूल क़ुरान से पहले के ऐसे लोग जो किसी न किसी आसमानी किताब पर ईमान रखते हों जिस का ज़िक्र चाहे क़ुरान में हो या न हो अहले किताब कहलाएंगे, गोया कि अहले किताब 'उम्मी' की ज़िद है। इस लिहाज़ से हिन्दूओं में से जो तबक़ात श्रवी ग्रन्थ पर ईमान रखते हों उन का शुमार अहले किताब में किया जाना चाहिए और जो ऐसा न करते हों उन्हें 'उम्मी' का दर्जा दिया जाना चाहिए। ऐसा महसूस होता है कि क़ुरान ने इन दोनों अलफ़ाज़ का इस्तेमाल करके इजमाली अहकाम की दो कैफियात को बयान किया है। एक वह जिस में तमाम तहरीफ़ात के बावजूद अक़ाइद की बुनियाद कोई तस्लीम शुदा किताब हो जिसे आसमानी भी समझाा जाता हो, चाहे गरदिशे अय्याम में उसके पैरू शिर्क या कुफ्र में मुबतला हो गए हों और दूसरी वह जिस में लोग अपने वहम व गुमान और ज़न के सहारे अपने मनमाने खुदाओं की पैरवी करते हों। पहला गिरोह ''अहले किताब'' शुमार किया जाता है और दूसरा ''उम्मी''।

हिन्दूओं को अहले किताब का दर्जा देने में यह पहलू रहनुमाई कर सकता हैं

12- हिन्दूओं के मज़कूरा अक़ाइद ख़ास तौर पर तौहीद पर उनके ईमान को समझने के लिए वैसे तो बहुत सी किताबों का मुताला किया जा सकता है मगर यहां चन्द हवाले पेशे ख़िदमत हैंः

''सिर्फ वही एक यकता ख़ूद से क़ाइम है'' (अथूर वेद 13-1-12)।

''संसार का ख़ालिक़ आगे पीछे, ऊपर, नीचे सब सजगर है'' (रिग वेद 10-24-14)।

''वह एक ही है, दूसरा नहीं है, नहीं है, नहीं है, ज़रा भी नहीं है'' (ब्रहम सूत्र)।

''उसी एक को सालेह लोग इन्द्र, मित्र और वरून कहते हैं, वही आसमान में बराजमान है, वही अग्नी, यम और मात्रश्वा है'' (रिग वेद 1-164-46)।

''है अग्नी तुम ही नेक लोगों की आरजूओं को पूरा करने वाले हो, तुम ही इबादत के लाइक़ हो, तुम ही बहूतों की हम्द के सजावार हो, तुम ही ब्रहम और प्रहस्ती हो'' (रिग वेद 2-1-3)।

''एक ही ख़ुदा के मुख़तलिफ़ नाम हैं, अहले इल्म उसे अलग अलग नामों से याद करते हैं'' (रिग वेद 10-114-05)।

''उसकी मूरत नहीं, उसका नाम ही आला और क़ाबिले हम्द है'' (यजूर वेद 32-3)।

''वह लोग ज़ुलमत में जा पढते हैं जो मख़लूक़ात की इबादत करते हैं, वह लाग और गहरी ज़ुलमत में दाख़िल होते हैं जो

अपने हाथ से बनाए हुए ख़ुदाओं की इबादत करते हैं'' (यजूर वेद 40-9)।

''ऐ नफ़्स! तू इन्सानी कलाम और ज़न से दूर रह कर उस मुक़द्दस कलाम की पैरवी को क़ुबूल कर और अपने रुफ़क़ा के साथ हक़ की पैरवी कर'' (उथर वेद)।

''उस जैसा ओर कोई नहीं है'' (छान्दोगया उपनशद 6-2-1)।

''हमें सीधा रास्ता दिख और हमारे उन गुनाहों को हम से दूर कर जो हमें बरबाद या गुमराह करदें'' (रिग वेद 40-16)।

''जो ब्रहम को नहीं जानता वह वेद से क्या फ़ाइदा उठा पाएगा'' (रिग वेद 1-164-39)।

''शादमानी और उनसियत जहां मौजूद हो, जहां सभी ख़्वाहिशात फ़ौरन पूरी होती हों उस ख़ल्द में हमें पनाह दो'' (रिग वेद 9-113-11)।

''इस काइनात के ख़ालिक़ की हम्द हो'' (रिग वेद 5-81-1)।

''जो सोर ख़ुदाओं का एक ख़ुदा है'' (रिग वेद 10-121-8)।

जूआ, शराब, सूद, क़त्ल, बेहयाई, वग़ैरा गुनाहों के ख़िलाफ़ भी वेदों में हुरमत पाई जाती है, मसलन फरमाया गया है: ''चूंकि ब्रहम ने तुम्हें औरत बनाया है, इसी लिए नज़रें नीची रखो, ऊपर नहीं, अपने पैरों को समेटे रखो, ऐसा लिबास पहनों कि कोई तुम्हारा जिस्म न देख सके'' (रिग वेद 8-33-19)।

ऊपर के हवालों से ज़ाहिर होता है कि आम हिन्दूओं का अमल चाहे जो हो, उन की बाज़ मुक़द्दस किताबों में तौहीद की वाज़ेह झलक

मिलती है।

13- इस्माईल फ़ारूक़ी राजही ने अपनी किताब ''कलचरल ऐटलस आफ़ इस्लाम (ब्नसजनतंस ।जसें वि प्सिंउ) में मुहम्मद बिन क़ासिम के हवाले से लिखा है कि जब यह नौजवान सिपा सालार ज़ेबल को फ़तह करने में कामियाब हो गया तो उसे सिंध का इन्तिज़ाम व इन्सिराम अपने हाथ में लिया। उस ने अहले सिंध के ब्राहम्नों और बौधों और उनके अक़ाइद के बारे में ख़लीफ़ा के पास मालूमात देते हुए इस्तिसवाब इरसाल किया कि उन्हें क्या समझाा जाए?। दरबारे ख़िलाफ़त से जवाब आया कि उन्हें 'मिस्ले अहले किताब' कहा जाए और उन्हें ज़िम्मियों के तमाम हुक़ूक़ हासिल होंगे। इस फ़तवे से हिन्दूओं और बौधों के बारे में आम राय बनी कि उन्के साथ अहले किताब की तरह मामला किया जाए। इस वाक़िआ का तफ़सील के साथ सिंध की तारीख़ में बारहा ज़िक्र हुआ है ख़ास तौर पर चचनामा में। उस दौर के ब्राहम्नों का तौहीद पर अक़ीदा इतना कमज़ोर था कि जब मुहम्मद बिन क़ासिम को वापस बुला लिया गया तो उन्होंने उस का एक बुत बनाकर मुहम्मद बिन क़ासिम की पूजा शरू कर दी। उस ज़माने से ही चन्द कशीदा हालात को छोड़ कर हिन्दूओं को अहले किताब का दर्जा हासिल रहा और उनसे एक लम्बे अर्सा तक जिज़या लिया जाता रहा, हिन्दू औरतें मुसलमानों के घरों में हिन्दू बन कर रह सकीं मसलन जोधा बाई, और उन्हें अपने मज़हबी मामलात में आज़ादी दी गई। अगर ऐसा न होता तो मुस्लिम दौरे हुकूमत में हिन्दूओं की अकसरियत बाक़ी न रहती। उलेमा-ए-दिमशत से लेकर अल बेरूनी और शाह वलीयुल्लाह तक एक तवील सिलसिला है जिस में हिन्दूओं या

उन्के कुछ ख़ास तबक़ात को अहले किताब समझाा जाता रहा है।

हिन्दूओं को अहले किताब मानने के ख़िलाफ़ जो आरा सामने आती हैं वह इस तरह हैं:

क- हिन्दू मुश्रिक हैं और तौहीद को नहीं मानते।

ख- उन के पास कोई ऐसी आसमानी किताब नहीं है जिसा ज़िक्र क़ुरान में हुआ हो।

ग- एप किसी नबी के पैरू नहीं हैं जिसका ज़िक्र क़ुरान ने सराहत से किया हो।

घ- इसकी ज़रूरत ही क्या है?

14- मुन्दर्जा बाला बहस में यह बात सामने आती है कि यहूद, नसारा, साईबीन और मजूस सभी किसी न किसी दर्जे का शिर्क करते थे, क़ुरान ने उन्हें इस पर मुतनब्बा करते हुए भी उन्हें एक ख़ास दर्जा दिया है जो उस ज़माने के अहले अरब को हासिल नहीं था। लिहाज़ा किसी का मुश्रिक होना उसके अहले किताब बनने में माने नहीं है। यह बात ऊपर ज़िक्र की जा चुकी है कि हिन्दूओं की मुक़द्दस किताबों का ज़िक्र क़ुरान में ज़ुबुरुल अव्वलीन और सुहुफ़ ऊला के नाम से किया गया है फिर भी यह मान लें कि यह ज़िक्र उन्के बारे में नहीं है तो भी चूंकि हिन्दू भी ज़ीनद ओस्था की तरह वेद और दूसरी किताबें रखते हैं। दूसरी तरफ़ मारूफ़ माना में जिनको साईबीन समझाा जाता है उनके पास तो कहने के लिए भी कोई आसमानी किताब नहीं फिर भी उन्हें एक दर्जा ख़ास दिया गया है, लिहाज़ा इस दलील में भी कोई ख़ास वज़न नहीं है। जहां तक उसकी ज़रूरत का सवाल है तो इस्लामी दावत के मैदान में इस की सख़्त ज़रूरत

महसूस की जाती है। इसके उलट यह भी कहा जा सकता है कि इस में हरज ही क्या है। अगर हिन्दू को अहले किताब तस्लीम कर लिया जाएगा तो अहले इस्लाम के अक़ीदा में क्या फ़र्क़ वाक़े हो जाएगा? ऐसा करना दर अस्ल नबी करीम स0 की रिवायत और आप के अता करदा उसूल की ही पैरवी होगी।

हालांकि मुस्लिम दौरे हुकूमत में तमाम हिन्दूओं को ''ज़िम्मी'' क़रार दे कर उन से जिज़या लिया जाता रहा है और मुहम्मद बिन क़ासिम से लेकर बहादूर शाह ज़फ़र तक उन की इस हैसियत में कोई तब्दीली वाक़े नहीं हुई, मगर यह सवाल आज के हिन्दू माशरे के बारे में उठना लाज़िम है कि उन की शरई हैसियत क्या हो? इस लिहाज़ से अहले किताब या मिस्ले अहले किताब के जो पैमाने फ़ुक़हा ने मुताय्यन किए हैं उन के लिहाज़ से हिन्दू की दर्जा बन्दी भी की जा सकती है। इस दर्जा बन्दी के लिए जो ख़ुसूसियात मख़सूस रखी जा सकती हैं वह हैं:

1- एक एसी हक़ीक़त पर ईमान जो इस काइनात का ख़ालिक़, मालिक, परवरदिगार और फरमांरवा हो।

2- फ़रिश्तों या उन जैसी मख़लूक़ात पर ईमान।

3- इन्सानी रहनुमाई के लिए किसी आसमानी किताब की ज़रूरत, वजूद और उस के मुताल्लिक़ ज़िन्दगी गुज़ारने की अहमियत को तस्लीम करना।

4- काइनात के फरमांरवा की जानिब से इन्सानों की रहनुमाई के लिए उसके फ़रिस्तादा के वजूद पर ईमान।

5- तक़दीर पर ईमान।

6- ज़िन्दगी बाद मौत पर ईमान।

7- अमल के मुताबिक़ सज़ा और जज़ा और इस ज़िम्न में जन्नत और दोज़ख़ का तसव्वुर।

8- तमाम ज़ाहरी और बातनी इख़्तिलाफ़ात और मुक़द्दस किताबों मु तहरीफ़ात के बावजूद इस हक़ीक़त को तस्लीम करना कि अपनी असल में तमाम अदयान, तमाम आसमानी किताबें और तमाम फ़रिस्तादा हस्तियां उसी एक फ़रमांरवा की जानिब से हैं जो काइनात का ख़ालिफ़ और परवरदिगार है।

9- आख़री नबी के सिलसिले में अपनी मुक़द्दस किताबों में मौजूद पेशनगोईयों पर ग़ौर व ख़ोज़ की अहमियत को समझना।

10- अमले सालेह के लिए किसी न किसी शक्ल में इबादत, रोज़ा, सदक़ा, तसबीहात, मुक़द्दस मक़ामात की ज़ियारत, क़ुरबानी, वग़ैरा की ज़रूरत को तस्लीम करना।

15- यहां यह सवाल भी अहम है कि क्या सारे हिन्दूओं को मिस्ले अहले किताब तस्लीम किया जाए या उन में से जो वाक़ई किसी आसमानी किताब का तसव्वुर रखते हों सिर्फ़ उन्हें। हक़ीक़त में 'हिन्दू' लफ़्ज़ किसी अक़ीदे या अक़ाइद के मज़मून की ग़म्माज़ी नहीं करता बल्कि यह किसी ख़ास इलाक़े में रहने वाले लोगों की जानिब इशारा करता है। मुस्लिम दौरे हुकूमत में हिन्दू ऐसे तमाम लोगों को कहा जाता था जो मुसलमान नहीं थे। उस मुल्क का नाम जो कभी दारुस्सलाम भी तस्लीम किया जाता था को 'हिन्दूस्तान' कहने में मुसलमानों को कभी तरद्दुद नहीं हुआ। ख़ूद हिन्दू अहले इल्म यह तस्लीम करते हैं कि 'हिन्दू' लफ़्ज़ या

तो फ़ारसी से मुस्तआर है या फिर क़दीम ज़माना में अफ़ग़ानिस्तान, पाकिस्तान और पंजाब के एक हिस्सा पर मुशतमिल इलाक़े में रहने वाले लोगों को हिन्दू कहा जाता था। यह भी हक़ीक़त है कि हिन्दूओं की अस्ल मक़सद किताबों में हिन्दू लफ़्ज़ का इस्तेमाल नहीं हुआ है, बल्कि उन को उन के अक़ाइद की बुनियाद पर मुख़तलिफ़ ज़ुमरों में दाख़िल किया गया है मसलन विश्नू को ख़ुदा तस्लीम करने और उसके अवतारों को तस्लीम करने वालों को विश्नू कहा गया, शिव को अपना मक़सूद मानने वालों को श्वि कहा गया, और काइनाती हक़ीक़त को मुवन्नस ताक़त के रूप में पूजने वालों को शकत कहा गया, इस के इलावा सिर्फ़ वेदों की पैरवी करने वाले लोग भी रहे हैं, मसलन आज के दौर के आरया समाजी। वहदतुल वजूद के अलम बरदार हमेशा तौहीद के बुनियादी तक़ाज़ों से दूर रहे हैं, जब्कि ख़ालिक़ और मख़लूक़ के इम्तियाज़ को तस्लीम करने वाले लोगों का भी तसलसुल पाया जाता है, मसलन लंगायत, ब्रहम समा, प्रनामी फ़िरक़ा, वग़ैरा।

ख़ुलासा कलाम

इस पूरी बहस के नतीजे में यह मौक़फ़ इख़्तियार किया जाना चाहिए कि मज़हबी हिन्दू अगर अहले किताब न सही मसलन अहले कताब का दर्जा तो यक़ीनन रखते हैं और भारत के मुसलमानों को उन के तईं इस एतेबार से अपने रवैये में तब्दीली करनी चाहिए। अगर तमाम हिन्दूओं के बारे में एक राय रखना दुशवार हो तो मुसल्लमा उसूलों के मुताबिक़ हिन्दूओं के मुख़तलिफ़ फ़िरक़ों और मज़हबी तहरीकात का जाइज़ा लेकर उन के बारे में वाज़ेह मौक़फ़ इख़्तियार किया जा सकता है।

हिन्दूओं के अक़ाइद और मज़हबी तसव्वुरात का गहरा इल्म रखने वाले लोग आम तौर पर शाज़ व नादिर ही पाए जाते हैं और जो मौजूद हैं वह भी अपने इल्म के ज़रिए क़ुरान व हदीस की रौशनी में मुताय्यन नतीजा अख़ज करने से क़ासिर होते है।, क्योंकि नुसूस से उन की वाक़फ़ियत कमा हक़्क़ाहु नहीं होती। इस लिहाज़ से ज़रूरी है कि अगर उलेमा-ए-किराम इस फ़िक़्ही सेमीनार में किसी नतीजा पर न पहूंच सकें तो उलेमा और मुक़्क़िक़ीन व दानिशवरों की एक कमेटी तशकील दी जाए जो इस मसला में मज़ीद तहक़ीक़ात के ज़रिए किसी वाज़ेह राय पर पजूंचने में मदद कर सके।

☆☆☆